Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

VOL- VIII ISSUE- VI JUNE 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

गीति काव्य परंपरा और उसका ऐतिहासिक विकास क्रम

डॉ॰ लियाकत मियाभाई शेख

लोकसेवा एजुकेशन सोसाइटी संचालित,

कला व विज्ञान महाविद्यालय,

गारखेड़ा परिसर,

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

गीत आदिम युग से ही मानव जीवन की आभिव्यक्ती का माध्यम रहाहै। गीत मनुष्य की भावना और रागात्मकता के साथ विकसित हुआ है। इसका प्रारंभिक स्वरूप मौखिक ही रहा है और इसकी लिखित परंपरा को वैदिक ऋचाओं में देखा जा सकता है किंतु एक विधा के रूप में इसकी पहचान आधुनिक युग में ही बन पाई है।वेदकी ऋचाएगीतात्मक है।रामायण, महाभारत और श्रीमद भागवत गीता-गीत ही है।संस्कृत काव्य और नाटक गीतात्मक है। गाथा साहित्य और अपभ्रंश साहित्य में गीति-तत्व को प्रमुखता से देखा जा सकता है। इस प्रकार से हम पाते है कि आदिकाल में गाथा, भक्तिकाल में भक्तिगीत केरूपमे गीत परंपरा प्रचलितरही है।रीतिकालमें भी इसकी उपस्थिती प्रमुखता से देखी जा सकती है। उन्निसवीशताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी साहित्य में आधुनिकता का प्रारंभ हुआ।पश्चिमी साहित्य के प्रभाव स्वरूप ही गीत विधा के रूप में उसकी स्थापना हुई। आधुनिक हिन्दी साहित्य में गीतिकाव्य एक महत्वपूर्ण विधा है। गेय पद-रचना को गीति कहा जाता है। गीति प्रत्येक देश और प्रत्येक जाती में अतिप्राचीन काल से गाये जाते रहे है और आज भी गाये जाते है। किंतु साहित्य में इन गीतोंको गीतिकाव्यकी संज्ञादी जाती है। गीत मानवी मन के विभिन्न भावों की अन्तःस्पर्शी एवं मार्मिक अभिव्यक्ति है। गीत पर यह आरोप भी रहा है कि यह अत्यंत व्यष्टीपरक और आत्म-केंद्रित रचना है। यह एक ऐसी काव्य विधा है जिसमें स्वानुभूति वर्णन की प्रधानता रहती है। इसी कारण गीतिकाव्य को अन्तः स्थल से वि:सृत होने वाली मनोहर निर्झरणी कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्लकविता के संबंध में जो विचार व्यक्त किए हैं वह गीतिकाव्य के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती हैं, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है, उसे कविता कहते है'। आचार्य शुक्ल कविता में रस और अभिव्यक्ति को विशेष महत्व देते है। इन्होने कविता को जीवन और जगत की अभिव्यक्ति माना है। किन्तु जयशंकर प्रसाद काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति मानते है। डॉ भगीरथ मिश्र के अनुसार'काव्य जीवन और सत्य को संवेद्य बनानेवाली शब्द-रचना है।

आधुनिक युगीन मानवी व्यस्तता एवं जटिलता के कारण खंड-काव्य, स्फुट, मुक्तक जैसी लघु रचनाओं का प्रचलन चल पड़ा। मुक्तक में कवि का व्यक्तित्व गौण तथा गीतों मे प्रत्यक्ष होता है,एक में अक्सर चित्र-खंड और सामान्य वातावरण का चित्रण होता है दूसरे में मानव की सुख-दुखात्मक अनुभूति की ग्रहणता होती है। मुक्तक में मुख्य रूप से बाह्य जीवन की अनुभूतियों का चित्रण होता है और गीत में अपने अतंस की अभिव्यक्ति होती है। मुक्तक में वस्तु-निष्ठता होती है जबकी गीत में भाव-निष्ठता, मुक्तक में कवि का व्यक्तित्व गौण तथा गीतों में प्रत्यक्ष होता है। गीतिकाव्य मुक्तक का ही प्रमुख भेद है। मुक्तक के दो भेद किए गए है – पाठ्य और गेय। गेए होने के कारण ये गीत कहलाते है। गीत के दो भेद दिखाई देते है – लौकिक गीत और साहित्यिक गीत। 'स्वछंद रूप से किसी भाव की अभिव्यक्ति करनेवाले गीतों को लौकिक कहते है किन्तु जिसमें भावाभिव्यक्ति को साहित्य की मर्यादा के साथ प्रस्तुत किया जाता है, उसे साहित्यिक गीत कहते है। यही गीतिकाव्य है'

गीत मानव मन के सुख-दुख, प्रेम-कलह, क्षोभ-पीड़ा, हर्ष-विषाद आदि भावों की मार्मिक तथा अंत:स्पर्शी अभिव्यक्ति है यह एक ऐसी काव्य विधा है जिसमें स्वानुभूति

वर्णन की प्रधानता रहती है। 'गीति कवि के अन्तःस्थल से नि:सृतहोने वाली वह मनोहर निर्झरिणीहै जिसमें गीत की लोल लहरियों की थिरकन और भावों की मधुरिमा तरंगवासियों का नर्तन समाविष्ट रहता है'। गीत मधुर-मंजुल कल्पना से मुक्त हृदयस्पर्शी और संप्रेषणीय रचना होती है। इसमे व्यक्तिपरक भावाभिव्यंजना का सन्निवेश होता है। अनुभूति की गहनता और विशुद्ध भावात्मकता गीतिकाव्य की विशेषता होती है। गीतकाव्य में संक्षिप्तता, मधुरता, तटस्थता,आत्माभिव्यंजकतासटीक रूप में व्यक्त होती है।

अंग्रेजी में 'गीत' के लिए दो शब्द प्रचलित है। लिरिक तथा सांग। लिरिक से तात्पर्य है- प्रगीत तथा सांग से तात्पर्य है- गीत। हिन्दी में 'प्रगीत' शब्द का प्रयोग अत्यंत अर्वाचिन है। गीत परिभाषित करते हुए महादेवी वर्मा दीपशिखा की भूमिका में लिखती है- साधारणतया गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। इसी प्रकार से हरिवंश राय बच्चन गीत को लेकर लिखते है 'गीत वह है जिसमें भाव, विचार, अनुभूति, कल्पना, एक छंद में कश्य की एकता हो और उसका एक ही प्रभाव पड़े' डॉ रामखेलावन पाण्डेय ने हिन्दी गीतकाव्य को परिभाषित कराते हुए लिखा है की 'वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनशील संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य है। मानव हृदय की वेदना को व्यक्त व्यक्त करने में जहाँ कविता असमर्थ हो जाती है वही गीत का जन्म होता है। गीत मानव हृदय की किसी छिपी कसक-टिस को सहज ही साकार कर देने का एक सफल और सबल माध्यम है। श्रेष्ठ गीत वही है जो भाव अथवा भावमय अनुभूतियों को शब्दों में समेट सके एवं उसकी भाषा में कोमलता एवं सहजता हो। गीतिकाव्य के संदर्भ में उक्त विद्वानों के विचारों के अवलोकन के पश्चात कहा जा सकता है कि 'गीतिकाव्य गीतकार के आंतरिक जगत की वह स्वतःप्रेरित तीव्रतम भावात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें विशिष्ट पदावली का सौंदर्य, अनुभूति की एकता एवं संगीतात्मकता के संयोग से द्विगुणित हो जाता हैं'।

गीतिकाव्य साहित्य की आधुनिक विधा होने के बावजूद भी भारतीय साहित्य में इसकी लंबी परंपरा को हम पूर्ववर्ती साहित्य में देख सकते है। वैसे तो गीत का अविर्भाव मनुष्य की भावना तथा रागात्मकता के साथ ही हुआ। प्रारंभ से यह लोकगीत के रूप में मौखिक ही रहे किन्तु इनका लिखित स्वरूप वैदिक रुचाओं में दिखाई पड़ता है। वैदिक साहित्य में 'गीत की मौखिक और लिखित दोनों परंपराएँ विकसित रही है लेकिन एक विधा के रूप में उसकी स्थापना आधुनिक युग में ही हुई है। इस संदर्भ में डॉ रवींद्र भ्रमर लिखते हैं 'हिन्दी काव्य में गीत की परंपरा बड़ी पुरानी है। राधाकृष्ण की प्रेम-लिलाओं व रंगे हुए मैथिल को कील विद्यापति के पद, निर्गुण-निराकार की सरल अनुभूतियों से झंकृत कबीर आदि संत कवियों के शब्द तथा भावाभिव्यक्ती की मार्मिक अवतारणा करने वाले सूर,तुलसी, मीरा आदि वैष्णव कवियों के लीलागान हमें उस वैभवपूर्ण परंपरा का विस्तृत परिचय देते है।

वैदिक साहित्य भारतीय साहित्यिक परंपरा का उद्गम स्थल रहा है। वैदिक साहित्य में ऋषियों की आत्मानुभूति गीतात्मक रूप में अभिव्यक्त हुई है। संगीत की अनिवार्यता में संपूर्ण वैदिक साहित्य और जीवन सरस बना दिया। इसी कारण उसमें तन्मयता, सुकोमलता तथा माधुर्य की रसधार निरंतर प्रवाहमान रही है। वैदिक गीतों में केवल मनोरंजन के लिए संगीत का संयोजन नहीं हुआ अपितु

ऋग्वेद में प्रकृति का सुंदर वातावरण और मानवीय भावनाओंका सुंदर संगीतात्मक स्वरूप देखने को मिलता है। गीतकाव्य के सभी लक्षण स्वर, ताल, लय, भावान्विती और संक्षिप्तता ऋग्वेद की रचनाओं में हमे प्राप्त होते हैं। सामवेद और यजुर्वेद का संगीत धार्मिक और दार्शनिक विकास की दृष्टि से परमोच्च हैं। यह असंदिग्ध सत्य है कि मानव-सृष्टि के साथ उसकी सुख-दुखात्मक आनुभूतियों के अंतर्गत नर नारियों के होठों पर संगीतमय शब्द फूटते रहेंगे। इस शब्द संगीत की परंपरा का प्रमाण 'ऋग' और 'साम'की रुचाओं में दिखाई पड़ता हैं। कालांतर में इन्ही रुचाओं का आधार लेकर गीत के टेक का निर्माण हुआ और यजुर्वेद की तीन स्वरों की कल्पना से सामवेद में आते-आते सात स्वर निर्धारित हुए अस्तु। "वैदिक काल के पश्चात महाभारत और रामायण अपने युग की दो महान रचनाए उपलब्ध होती है। ये दोनों ग्रंथ महाकाव्य की श्रेणी में आते है, वास्तव मे यह गीतिकाव्य ही है। आदिकाव्य रामायण को भारतीय काव्य-साहित्य का आदर्श प्रतिष्ठापक माना गया है। रामायण अपने गेय तत्व के लिए प्रसिद्ध है। इसी प्रकार से महाभारत को पाश्चात्य विद्वान वीर गीत की श्रेणी में रखते हैं। संस्कृत गीतिकाव्य रामायण और महाभारत अपने युग की श्रेष्ठतम रचनाएँ है।

आचार्य कपिल ने कालीदास के 'ऋतु-संहार' को संस्कृत-साहित्य का प्रथम गीतिकाव्य का श्रेय देते है। पंडित लीलाधर त्रिपाठी इस संदर्भ में लिखते है- कालीदास का 'मेघदूत' ही ऐसा प्रथम काव्य है जिसे गीतिकाव्य की संज्ञा दी गयी है। मेघदूत में गीतात्मकता कूट-कूट कर भरी है। कालीदास के पश्चात 'गीतिकाव्य' की धारा को क्षेमेन्द्र और जयदेव ने गती प्रदान की। कालीदास के पश्चात गीतिकाव्य की रचना करनेवालों में जयदेव का सर्वोच्च स्थान है। जयदेवकृत 'गीत-गोविंद' गीतिकाव्य की उत्कृष्ट रचना है। गीतिकाव्य की दृष्टि से गीत-गोविंद का अभिव्यक्ति-कौशल बेजोड़ है। इनके गीतों में ध्वनि और अर्थ का सुंदर सामंजस्य दिखाई देता है। साथ ही भावों की तीव्रता, गहनता और भाषा की कोमलता इनके गीतिकाव्य की विशेषता रही है। इन्ही की परंपरा को आगे सुचारु रूप से बढ़ाने का कार्य विद्यापति ने किया। गीति परंपरा में जयदेव के पश्चात विद्यापति का स्थान सर्वोच्च है। मैथिल को कील विद्यापति के संदर्भ में डॉ शिवप्रसाद सिंह लिखते है- 'हिन्दी के सर्वप्रथम गीतकाव्य लेखक विद्यापति है'। वे मध्ययुगीन दरबारी कवियों की परंपरा में होते हुए भी जन जीवन के प्रती पूर्ण रूप से जागरूक थे। विद्यापति के मधुर गीतों का प्रभाव सारे पूर्वी प्रदेश पर पड़ा। बंगाल के कवियों ने चंडीदास तक ने इन गीतों को आदर्श के रूप में स्वीकृत किया और उनकी भाषा तक को ग्रहण किया। विद्यापति का गीति साहित्य अपभ्रंश साहित्य में सर्वोच्च स्थान रखता है। कोमलकांत पदावली और गेयत्व गीतिकाव्य की विशेषता रही है।

हिन्दी साहित्य में गीतिकाव्य की एक लंबी परंपरा को देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल भीतरी कलहों और बाह्य संघर्षों का युग रहा है। इस काल के साहित्य में विभिन्न प्रकार की साहित्यिक परंपराओं को देखा जा सकता है। इस दृष्टी से आदिकालीन गीतियों को धार्मिक और लौकिक दो धाराओं में विभाजित किया जा सकता है, एक लौकिक और दूसरी धार्मिक। लौकिक काव्य परंपरा में वीरगाथाएँ आती है, जबकी धार्मिक साहित्य में मुख्यतः सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य और जैन-साहित्य आदि आते है। सिद्ध-साहित्य में बौद्ध-धर्म के सिद्धांतों का विवेचन हुआ है। इनमे हिन्दी गीतिकाव्य का प्रथम उन्मेष दिखाई देता है। उन्होने जनता से संपर्क स्थापित करने का जो साधन अपनाए, उनमें गीतों का प्रमुख स्थान है। सिद्धों में कतिपय अच्छे पंडित और लोकदर्शी थे। ---सिद्धों के पदों में हमें गीतों का वह रूप दिखाई पड़ता है जो यूगों से लोकजीवन के साथ चलता चला आ रहा था। सिद्ध साहित्य अपने परवर्ती गीतिकाव्यकारों जयदेव, विद्यापति और सूरदास आदि के लिए प्रथ प्रदर्शन किया। एक प्रकार से कह सकते है कि सिद्धों के पद गीतिकाव्य की मणिमाला में महाई मणि है। नाथ-साहित्य को सिद्ध साहित्य की प्रतिछाया भी कहा जा सकता है। सिद्धों का विचारधारा को लेकर इस सम्प्रदाय ने उसमे नवीन विचारो की प्राण-प्रतिष्ठा की। नाथ-साहित्य को सिद्धों का विकसित तथा शक्तिशाली रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार नाथ-युग को सिद्ध युग और संत साहित्य के बीच की कड़ी माना जाता है। मध्ययुगीन गीत और भाषा पर इनका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। गोरखनाथ की इन पंक्तियों में गीतात्मक की छाप दिखाई देती है।

हंसिबा खेलिबा गाइबा गीत ।
दृढ करि राखि आपने चीत ॥

इसी प्रकार से जालंधरनाथ, चर्पटनाथ आदि की रचनाओं में भी गीतात्मकता के सहज दर्शन होते है। इस संदर्भ में डॉ सुरेश गौतम के विचार विशेष रूप से अवलोकनीय है वे लिखते है- 'नाथ-पंथियों का हिन्दी साहित्य में सबसे बड़ा योगदान छंदों का है। इन्होने दोहा, चौपाई, चर्या, सोरठा, छप्पय जैसे छंदों में अपने वैभव की अतुल राशी विखरी है। इनके सभी पद संगीतात्मकता से परिपूर्ण है। सिद्ध और नाथ साहित्य की अपेक्षा अपभ्रंश का जैन-साहित्य अधिक विस्तृत और समृद्ध है। उसमें काव्य के मिश्र रूपों-प्रबंध, मुक्तक,गीतिकाव्य आदि के दर्शन होते है। जैनों का धार्मिक साहित्य अपभ्रंश से निकाली हुई प्राचीन हिन्दी में है। जैन धर्म का उदय लगभग बौद्ध-धर्म के समांतर ही हुआ। इनके काव्य में साहित्यिकता और लोकानुरंजन की भावना के दर्शन होते है। इसमें धार्मिक सिद्धातों के साथ-साथ मानव-हृदय की सहज कोमल आनुभूतियों का चित्रण मिलता है।

रासो काव्य परंपरा में चारणों द्वारा लिखी या गायी जानेवाली प्रशस्तिपरक काव्यों का अंतर्भाव होता है। रासो काव्य मुख्य रूप से आश्रयदाता राजाओं की प्रशस्ती में गाया गया चारण काव्य है। इसमें वीर रस की प्रधानता के साथ श्रुंगार रस की भी प्रचुरता दिखाई देती है। वीरगाथा – युग में गीतिकाव्य का सृजन हुआ। यद्यपि इस काल का साहित्य अधिकांश में वर्णनात्मक है तथापि इसमें वीरोल्लास के गीत

है (आल्हाखंड में) और विरह-मिलन के गीतों का अभाव नहीं। इस कालखण्ड की प्रसिद्ध रचनाओं में पृथ्वीराज रासो, बिसलदेव रासो, संदेस रासक आदि में गीति-तत्व विद्यमान है। इनके अलावा डिंगल साहित्य गीतों के लिए प्रसिद्ध है। ढोलमारू-रा-दुहा गीति-तत्व का उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है। दूसरी ओर अमीर खुसरो ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। खुसरों को हिन्दी का प्रथम कवि माना जाता है। इनकी मुकरियाँ, पहेलियाँ और गझलें अत्यंत लोकप्रिय रही है। अमीर खुसरो खड़ी बोली हिन्दी के प्रथम गीतकार प्रमाणित होते है।

सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ महाकवि के पदों में इस युग के अंतिम समय की स्वतंत्र गीति-परंपरा के दर्शन होते है। इन्होने लोकगीतों की मधुर लयों को साहित्य में पल्लवित किया। डॉ प्रांजल पाठक के अनुसार अमीर खुसरों ने एक ओर अपनी मुकरियों, पहलियों और गीतों से खड़ी बोली हिन्दी कविता की जमीन बनाई तो दूसरी ओर नए साज और राग रचकर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत को नया रूप दिया इन पदों द्वारा हिन्दी भाषा की गीति-परंपरा ने समृद्धी तो प्राप्त की ही, आधुनिक गीत का ताजमहल भी इसी की नींव पर खड़ा है। डॉ सुरेश गौतम गीतिकाव्य का प्रणव अक्षर विद्यापति न होकर अमीर खुसरों को मानते है। लोकसाहित्य को समृद्ध बनाने तथा हिन्दी में इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय अमीर खुसरों को ही जाता है।

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल को स्वर्णयुग के रूप में पहचाना जाता है। संतों ने काव्य और संगीत के माध्यम से भक्ति, उपासना, ज्ञान और धर्म आदि की शिक्षा देकर मृत:प्राय समाज को जीवन-दान दिया। डॉ सुरेशचन्द्र निर्मल लिखते हैं- गीतिकाव्य का विकास हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में आकार हुआ है। इसी दृष्टी से इसे गीत के विकास का भी स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस युग में सगुण और निर्गुण और निर्गुण का प्रचार गीतों के माध्यम से ही संभव हुआ क्योंकि काव्य की अपेक्षा गीत मर्म को जल्दी स्पर्श कर लेते है। सगुण-निर्गुण धारा हो राम का आदर्श अथवा कृष्ण का यथार्थ, कबीर का ध्यान हो या जायसी का प्रेम सभी में अध्यात्मिकता गीतों में ग्रंथित है। नामदेव वारकरी संप्रदाय के प्रमुख संत थे। इन्होने भजन और कीर्तन के आधार पर गीति-शैली में परिवर्तन किया। गीति-शैली की रससत्ता, संक्षिप्तता और प्रभावन्विति कबीर के पदों के प्राण है। हिन्दी में गीतिकाव्य के दर्शन सर्वप्रथम कबीर आदि संत कवियों के काव्य में होते है।जायसी की मसनवी शैली गीति-काव्य का उत्तम उदाहरण है। निर्गुण धारा के इस कविने प्रेम-मार्ग का अनुसरण गीतों के माध्यम से किया है। सूरदास के गीत भाव और संगीत-कला के आत्मिक स्वर है। इस दृष्टी से सूरदास का 'सुरसागर' गीतिकाव्य की सर्वोत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। सुरसागर को गेय पदों का सागर कहे तो अतिशोक्ति नहीं होगी। सूरदास के पद इतने कलापूर्ण और सुंदर है कि इसे गीतिकाव्य का सर्वोत्तम उत्कर्ष कहा जा सकता है। सुर में साहित्य और संगीत का अनुपम संगम है। तुलसी के गीतों का संग्रहीत रूप 'गीतावली' कृष्ण-गीतावली और विनय पत्रिका है।

तुलसीकृत उक्त रचनाएँ सफल गीतिकाव्य के उत्कृष्ठ उदाहरण है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में गीति-तत्व की प्रधानता विद्यमान हैं। मीरा को भक्तिकाल गीत-साम्राज्ञी कहा जाता है। मीरा के गीत वैयक्तिकता आत्माभिव्यंजना व संघर्ष की सधनता के कारण मर्मस्पर्शी बन पड़े है। मीरा के पद उन्मुक्त हृदय की मुक्तवाणी है जो अनुभूति की सत्यता आधारीत होने के कारण सीधे हृदय में कोमल भावनाओं को उद्दीप्त कर देते है। मीरा के गीतों को लक्ष्य कराते हुए डॉ राजकुमार वर्मा लिखते है- भक्तिकाल में गीतों का उत्कृष्ठ रूप मीराबाई के गीतों में देखने को मिलता है। रस-माधुर्य विरह-वेदना, कल्पना-कौशल, अनुभूति की तीव्रता, दापंत्य रीति की मधुरता का आधिक्य मीराबाई के गीतों में है। इसी प्रकार से भक्तिकालीन अन्य कवियों में रैदास, दादूदयाल, गुरुनानक, नामदेव, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, आदि में भी गीतितत्व का उत्तम पोषण हुआ है। सारांशरूप में कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य की दृष्टि से 'भक्तिकाव्य' का योगदान अत्यंत अत्यंत ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

रीतिकाल तक पहूँचते हुए गीतिकाव्य का प्रवाह कुछ विरलसा प्रतीत होता है किन्तु देव, धनानंद, रसखान, भूषण, आदि ने इस दिशा में अपना योगदान अवश्य दिया है। इसकाल में दरबारी प्रवृत्ति के कारण कविता भक्तिकालीन उच्चासन से गीर गई। गीतिकाव्य की दृष्टि से रहीम और रसखान के दोहों में गीतात्मक वृत्ति अधिक दिखाई देती है। इस काल के रीतिमुक्त कवियों ने गीतात्मकता को बनाए रखा। धनानंद इसी श्रेणी में अग्रणीय है। उन्होने दरबारी मनोवृत्ति से बाहर आकर आत्मानुभूति को वाणी दी। इस संदर्भ में डॉ गणेश खरे लिखते है- रीतिकाल में गीत की धारा

विरल अवश्य हुई परंतु अवरुद्ध नहीं। इस काल के अन्य कवियों में जटमल, भूषण, मान, गोरलाल 'लाल'श्रीधर, मुरलीधर, पद्माकर आदि कवियों के गीतिकाव्य का अपना महत्व है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में गीतिकाव्य एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में नए-नए कीर्तिमान स्थापित किए है। भारतेन्दु युगीन गीतिकाव्य प्राचीन और नवीन का संगम स्थल कहा जा सकता हैं। भारतेन्दुजी ने गीतिकाव्य को नए प्रतिमान प्रदान किए। वास्तव में भारतेन्दुजी का कालखण्ड सामाजिक और राजनीतिक जागरण का काल था। भारतेन्दुजी इस युग के प्रतिनिधी गीतकार के रूप में उभरकर आते है। वास्तव में भारतेन्दु नवजागरण के अग्रदूत थे उन्होने पुराने गेय पदों के समानांतर नए पदों की रचना की। भारतेन्दु के प्रणितकाव्य को द्विवेदी युग में विस्तार मिला द्विवेदी युग में इन गीतकारों ने हिन्दी भाषा और साहित्य के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और नैतिक चेतना को उजागर किया। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, सियारांशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध' आदि प्रमुख है। इन कवियों ने जहां गीतिकाव्य को उचाई प्रदान की वही पर छायावाद की पृष्ठभूमी भी निर्माण की। छायावादी साहित्य कला और भाव क्षेत्र में एक महान आंदोलन है। छायावाद हिन्दी साहित्य के इतिहास का अत्यंत गौरवमय अध्याय है। छायावादी रचनाकारों ने जीवन को ऊपर से नही देखा बल्कि उसके अंतरंग में प्रवेश कर जीवन तथा जगत के शाश्वत सत्य का उदघाटन किया हैं। छायावादी साहित्यकारों के संवेदना का स्वर मानवीय है। छायावादी साहित्य कला और भाव-क्षेत्र में एक महान आंदोलन है। हिन्दी साहित्य में गीत-परंपरा के विकास से संगीत और काव्य एकाकार हो गए। छायावादी रचनाओंमें संगीतात्मकता का आविर्भाव कोई आकस्मिक घटना नही है। इस काल के प्रायः बहुतांश कवि संगीत तत्व के मर्मज्ञ थे। संगीत के योग से ही इसमे सौन्दर्य का उत्कर्ष हुआ। पंतजी को संगीत के विभिन्न रागों, ताल आदि तत्वों का सम्पूर्ण ज्ञान था। छायावादी रचनाकार कविता में ऐसा स्वतंत्र संगीत लाना चाहते थे जो अपने आपमें स्वतंत्र और स्वयंपूर्ण हो। छायावादी कवि संगीत शाला के अछे जानकार थे। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवियों के साहित्य में मानव-हृदय के रूप, उल्लास, शोक, करुणा, वियोग और सुख-दुख की व्यंजना की। संक्षेप में कहा जा सकता है कि छायावादी कविता में गीति-तत्व विद्यामान है। अपितु अनेक कवि स्वयं गायक भी रहे है। संयोगवश सभी रचनाकर गेय-तत्व के मर्मज्ञ थे और उनका स्वतंत्र चिंतन भी था।

प्रगतिवाद का प्रारंभ 1935-36 से माना जाता है। इसमें व्यष्टिगत भावनाओं स्थान पर समष्टिगत विचारधारा को महत्व दिया गया छायावादोत्तर काल के बाद गीत की धारा कुछ विरल होने लगी लेकिन उसका अस्तित्व अक्षुण्ण रहा। प्रगतिशीलता मानव-जीवन के विकास का सहज सोपान हैं। प्रगतिशीलता व्यक्ति समाज और राष्ट्र के विकास पर ही अवलंबित होती हैं। प्रगतिवादी युग के गीतों में प्रेम, सौंदर्य, और प्रणय की प्रधानता रही हैं। इस युग के प्रमुख गीतकार गोपालसिंह नेपाली, डॉ रवींद्र भ्रमर, रमानाथ अवस्थी, रघुवीर सहाय, कीर्ति चौधरी आदि है। प्रगतिवादी कवियों ने रुबाई और गजल लिखकर एक और जहां गीतात्मकता को स्वीकारा है। यह सत्य है की इस काल में गीतात्मक रचनाएँ कम लिखी गई लेकिन गीत का स्त्रोत विरल होकर भी प्रभावमान रहा। स्पष्ट है की प्रगतिवादी काव्य-धारा में भी गीतात्मकता अक्षुण्ण रही।

प्रयोगवाद से आधुनिकतावाद का प्रारंभ होता है। इसे प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया भी कहा जा सकता हैं। हिन्दी में प्रयोग वाद का भी जन्म 1943 से माना जाता है। प्रयोगवाद, प्रतीकवाद, प्रपद्यवाद, रूपवाद और नयी कविता इसके विविध नाम हैं। साहित्य के पुरातन रुढियों को तोड़कर नई भावभूमी का अन्वेषण कराते हुए अभिव्यक्ति की नयी संभावना के साथ प्रयोग करने कि सर्जनात्मक प्रवृत्ति ही प्रयोगवाद हैं। डॉ रामनारायण पटेल प्रयोगवादी गीतिकाव्य काव्य को लक्ष्य करते हुए लिखते है- निष्कर्षत: कहा जा सकता है की सन 1940 के बाद के गीत गीतकाव्य रूपों की दृष्टी से पर्याप्त समृद्ध है। इन गीतों में यदि एक ओर परंपरागत भूमि पर भाव का व्यक्तिकरण हुआ तो लोक लयों पर आधारित कतिपय गीत भी सुंदर बन पड़े है। रागात्मक तत्व को बौद्धिक माध्यम से व्यक्त करने के कारण इस युग की कविता में भाव की नवीन अभिव्यक्तियाँ मिलती है। बौद्धिकता की पर्याप्त मात्र विद्यमान होने पर भी गीतिकाव्य का सुंदर सृजन हुआ है। प्रयोगवादी काल में भी गीतिकाव्य का अस्तित्व बन रहा नये ढंग के गीत लिखनेवालों में अज्ञेय,

माथुर, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल शर्मा, भवानीप्रसाद और केदारनाथ सिंह आदि प्रमुख है। इस काल में सप्तकीय और सप्तकेतर गीतों की धारा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी गीतकारों ने काव्य को नया संस्कार दिया है।

नवगीत आधुनिक हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण काव्य विधा है। सन 1950 के आसपास हिन्दी गीतों में एक नवोन्मेष दिखाई देता है। नवगीत एक विशेष शैली की कविता है। 'नवगीत' एक नयी विधा है जो लोकचेतना संस्कृती, जातीय संस्कार और जातीय सौंदर्य-बोध से जुडने की अपनी निजी विशेषता के आधार पर विकसित हुई है। सन 1970 से 1985 तक का काल नवगीत का उत्कर्ष काल है। इसी कालखण्ड में नवगीत ने समग्र विकास किया। नवगीतकारों में उमाशंकर तिवारी, रविंद्र भ्रमर, रमेश रंजन, ओम प्रभाकर, उमाकांत मालवीय, शंभुनाथ सिंह, नईम, देवेन्द्र शर्मा आदि बहू चर्चित नाम है। नवगीत हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ठ काव्य-विधा के रूप में अपनी पहचान स्थापित करने में सक्षम रहा है। नवगीत और नयी कविता समानांतर काव्य-धाराएँ होकर भी परस्पर विरोधी नहीं है। संक्षेप में कहा जा सकता है की नवगीत गीति-परंपरा का नव-विकसित स्वरूप है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य की विधा साहित्य की सर्वाधिक प्राचीन एवं सर्वोत्तम विधा मानी जाती है, यह एक शाश्वत एवं प्राणवान विधा है। गीत आदिम विधा है जो एक ओर लोकगीत के रूप मे मनुष्य की आदिम वृत्ति को अनावृत्त करता है,तो दूसरी ओर वेद, उपनिषद, पुराण आदि परंपरा को प्रोन्नत करता हुआ मानव-विकास की गाथा को व्यक्त करता है। वस्तुतः गीतिकाव्य साहित्य जगत की नही अपितु मानवीय इतिहास के साथ-साथ चलनेवाली अति प्राचीन विधा है। इसके बिना मानव जाती का जीवन-जगत अपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि:-

1. काव्यशास्त्र के मानदंड – डॉ इंद्रबहादुर सिंह, पृष्ठ 26, विनय प्रकाशन,अहमदाबाद, 1999
2. चिंतामणि (भाग-1) रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 113,इंडियन प्रेस प्रयाग, 1965
3. काव्य मनीषा- डॉ भगीरथ मिश्र, पृष्ठ 20
4. काव्यशास्त्र और रूप- प्रो अवध किशोर प्रसाद, पृष्ठ 26
5. काव्यशास्त्र के मानदंड – डॉ इंद्रबहादुर सिंह,पृष्ठ 26, विनय प्रकाशन,अहमदाबाद, 1999
6. विभंगिमा प्राक्कथन- हरिवंशराय बच्चन, पृष्ठ 9
7. गीतिकाव्य- डॉ रामखेलावन पाण्डेय, पृष्ठ 36
8. हिन्दी गीतिकाव्य- डॉ ओमप्रकाश अग्रवाल, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 2
9. जयशंकर प्रसाद का गीतिकाव्य- डॉ शीतला प्रसाद दुबे, पृष्ठ 41,गीता प्र काशन,हैदराबाद,1996
10. समकालीन हिन्दी कविता- डॉ रवींद्र भ्रमर, पृष्ठ 73 राजेश प्रकाशन,दिल्ली,1972
11. गीत समीक्षा के प्रतिमान : डॉ सुरेश गौतम, डॉ प्रांजल पाठक, पृष्ठ 102,शब्द सेतु दिल्ली,2002
12. संस्कृत के महाकवि और काव्य- डॉ रामजी उपाध्याय,पृष्ठ 2-3,रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद,1965
13. गीतिकाव्य का विकास- पंडित लीलाधर त्रिपाठी 'प्रवासी', पृष्ठ 4, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1961
14. विद्यापति- डॉ शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 195
15. गीतिकाव्य का विकास- पंडित लीलाधर त्रिपाठी 'प्रवासी', पृष्ठ 411
16. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत- डॉ वचनदेव कुमार, पृष्ठ 58, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1964
17. सूर्यमपश्या गीत-यात्रा :- पदचाप एवं प्रतीतिया, खंड-1,डॉ सुरेश गौतम, पृष्ठ १८५, शारदा प्रकाशन नई दिल्ली,1993
18. काव्य के रूप, गुलाबराय, संस्करण, 1967, पृष्ठ 117
19. हिन्दी नवगीत : युगीन संवेदना- डॉ रामनारायन पटेल, पृष्ठ 68, अनुभव प्रकाशन,गाझियाबाद, 2009
20. गीत समीक्षा के प्रतिमान : सुरेश गौतम- डॉ प्रांजल पाठक, पृष्ठ 106, शब्द सेतु दिल्ली,2002
21. तुलसीदास: कवि और काव्य- डॉ सुरेशचन्द्र निर्मल, पृष्ठ 293
22. हिन्दी के प्रतिनिधी कवि- डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ 84 विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
23. हिन्दी गीत-यात्रा एवं समकालीन संदर्भ- संपादक डॉ विनय कुमार पाठक / डॉ श्रीमती जयश्री शुक्ल, पृष्ठ 246 भावना प्रकाशन दिल्ली,2005
24. आधुनिक प्रगीत काव्य डॉ गणेश खरे, पृष्ठ 86 अनुसंधान प्रकाशन कानपुर,1965
25. हिन्दी नवगीत: युगीन संवेदना डॉ रामनारायन पटेल, पृष्ठ 95, अनुभव प्रकाशन गाजियाबाद,2009
26. हिन्दी गीत-यात्रा एवं समकालीन संदर्भ- डॉ विनय कुमार पाठक एवं डॉ जयश्री शुक्ल, डॉ प्रणव का अग्रलेख-प्रासंगिकता के आईने में, नवनीत,पृष्ठ 719, भावना प्रकाशन दिल्ली,2005